International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.379 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 9, Issue 6, November 2022 |

कबीर के काव्य की वर्तमान मे प्रासंगिकता

Rakesh Kumar Sharma

Assistant Professor in Hindi, Govt. College, Badi Sadri, Dist- Chittorgarh, Rajasthan, India

सार

कबीर युग दृष्टा कवि थे। उनका व्यक्तित्व, उनकी वाणी युगीन परिस्थितियों की देन है। कबीर ने अपने वर्तमान को ही नहीं भोगा बल्कि भविष्य की चिरंतर समस्याओं को भी पहचाना।कबीर का समाज जात-पांत, छुआछूत, धार्मिक पाखंड, मिथ्याडंबरों, रुढ़ियों, अंधविश्वासों, हिन्दू-मुस्लिम वैमनष्य, शोषण-उत्पीड़न आदि से त्रस्त तथा पथभ्रष्ट था। समाज के इस पतन में धर्म, धर्मशास्त्रों तथा धर्म के ठेकेदारों की अहम भूमिका थी। कबीर ने समय की नस को पहचाना। समाज के मार्गदर्शन हेतु एक बड़े संघर्ष एवं परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की। तत्कालीन विकृतियों और विसंगतियों के खिलाफ लड़ने की अथक दृढ़ता एवं सत्य की साधना का अदम्य साहस उन्हें जीवनानुभवों से मिला। उन्होंने जिन सामाजिक, सांस्कृतिक विषमताओं के खिलाफ आजीवन संघर्ष किया, वे आज भी यथावत हैं। कबीरदास का वैचारिक आंदोलन आज भी वर्ग-विहीन समाज के निर्माण, मानवता की बहाली, प्रेम, हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द, आडंबरहीन भक्ति तथा नैतिकता के निर्माण के लिए नितांत प्रासंगिक है।

परिचय

हर युग का साहित्य अपने युग का आईना होता है। उसमें युगीन चेतनाएँ, विसंगतियाँ एवं विद्रूपताएँ अपने यथार्थ रूप में सन्निहित होती हैं। एक जागरूक रचनाकार केवल अपने समय को नहीं जीता बल्कि अपने अतीत और भविष्य में भी रचता-बसता है। वह समाज से मूल्य ग्रहण कर उन्हें संवर्द्धित, परिष्कृत कर समाज के लिए उपयोगी, सार्थक तथा स्वस्थ मूल्यों का निर्धारण करता है। ऐसा साहित्य अपने युग का इतिहास होने के साथ-साथ युगांतकारी तथा कालजयी होता है। वर्तमान समय में हमारे चारों ओर बढ़ती जटिलताओं, विडंबनाओं एवं विसंगतियों के कारण बार-बार पूर्ववर्ती साहित्य एवं विचारों की प्रासंगिकता की मांग बड़ी है। ऐसा पूर्ववर्ती साहित्य जो हमारी सत वृत्तियों का मंडन कर असत वृत्तियों का खंडन करने के साथ-साथ मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर समाज को भविष्योन्मुख बनाने को प्रतिबद्ध हो,सदैव प्रासंगिक रहता है। रमेशचन्द्र शाह रचना की प्रासंगिकता पर लिखते हैं– "रचना की प्रासंगिकता का निकष इकहरा नहीं हो सकता, क्योंकि वह रचना की प्रासंगिकता का निकष है, जिसकी रचनात्मकता काव्य, संस्कृति के मूल्यों पर भी प्रासंगिक हो। उसके साथ-ही-साथ रचना वह प्रासंगिक है जो अपने समय की मानव सच्चाईयों का उनकी पूरी जटिलता में साक्षात्कार कराती हो। यह दोहरी प्रासंगिकता रचना की राह में हर अवरोध को, हर रचना-द्रोही परिस्थितियों को तोड़ने वाली होगी और मनुष्य मात्र की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाली होगी। जाहिर है कि यह तभी हो सकता है, जब रचना मात्र समसामयिक ही न हो बल्कि मनुष्य मात्र की स्वतंत्रता को कुंठित करने वाले हर खतरे को सूंघ लेने वाली हो। अतीत की होकर भी वर्तमान को भी पहचानने वाली हो।"[1] [1]

मध्ययुग में कबीर और संतों की वाणी ने जो अलख जगाया वह आज भी उतना ही महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है जितना तत्कालीन युग में था। कबीर अपने युग की उपज हैं। युगीन परिस्थितियों एवं समय की मांग ने उनके व्यक्तित्व को गढ़ा। वे सारग्राही महात्मा थे। जिन्होंने अपने समय में प्रचलित सभी मत-मतांतरों के सार को ग्रहण किया। उन्हें अपने तर्क और अनुभव की कसौटी पर कसा, जो विश्वास, मान्यताएँ, मानवता, नैतिकता एवं भक्ति की राह में व्यर्थ बाधक थे उनका विरोध किया। कबीर सच्चे भक्त होने के साथ-साथ एक प्रखर, तेजस्वी, स्पष्ट वक्ता, साहसी, निर्भीक, निरभिमानी, विनय, सहृदय, परदुःखकातर आदि गुणों के धनी थे। सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ियों-आडंबरों, दुराचार, पाखंडादि का जैसा तीव्र विरोध उनमें देखा जाता है, वह अद्वितीय है। मध्ययुग मुगलों के आक्रमणों, धर्मांतरण, देशी राजाओं की विलासिता, धार्मिक पाखण्डादि से उपजे असुरता, भय, कुंठा, सांप्रदायिकता, रूढ़ियों, अंधविश्वासों एवं कुरीतियों का युग था। हताश-निराश जनता मंत्र, योग, जात-पांत, छुआछूत, सामंतशाही, दमन-शोषण से त्रस्त थी। समाज नैतिक पतन के गहरे गर्त में गिर रहा था। ऐसे में संत कवियों ने समय की नस को पकड़ा। उन्होंने जो कहा अपने अनुभव से कहा। जो देखा, भोगा और सहा उसी की काव्यात्मक अभिव्यक्ति कबीर की वाणी है। [2,3]

कबीर से लेकर अन्य सभी संत समाज के अति सामान्य समझे जाने वाले पेशे से संबंध रखते थे। ये मोची, बुनकर, दर्जी, धोबी, लोहार आदि थे। समाज अनेक जातियों-उपजातियों, विभिन्न वर्गों में विभाजित था। फलस्वरूप जातिप्रथा तथा भेदभाव ने समाज को खोखला कर दिया था। मानवता कराह रही थी। कबीर मानव मात्र के समानता के पक्षधर थे। उनके अनुसार ऊँचे कुल में जन्म लेने से या ब्राह्मण होने मात्र से कोई ऊँचा या श्रेष्ठ नहीं हो जाता। मनुष्य अपने आचरण एवं सुंदर कर्मों से ऊँचा बनता है। सोने के कलश में मदिरा भरा हो तो निंदनीय हो जाता हैं-

"ऊँचे कुल का जनमियाँ, जे करणी ऊँच न होइ।
सोबन कलस सुरै भरया, साधू निंदत सोइ॥"[2]

कबीर का युग सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से अनास्था, विघटन और वर्जनाओं का युग था। इनके पोषण में धर्म की अहम भूमिका थी। सामाजिक, राजनैतिक सभी निर्णयों के आधार धर्मशास्त्र होते थे। कहने को यह धर्म था परन्तु मानवीय धरातल पर अधर्म से कम नहीं। जो धर्म समाज, आस्था, राजनीति सभी के मूल में था, वही समाज के एक वर्ग के शोषण, उत्पीड़न एवं अन्याय के लिए जिम्मेदार भी था। जिन्हें पूजा-पाठ, पठन-पाठन तथा समता का कोई अधिकार प्राप्त न था। वे अछूत, निम्न थे सभ्य कहे जाने वाले समाज के लिए। अतः कबीर ने ईश्वर भक्ति सबके लिए सुलभ बनाई निर्गुणोपासना के द्वारा। निर्गुण भक्ति ने समाज के निम्न वर्गों के लिए भक्ति और धर्म का द्वार खोल दिया। इसमें मंदिर, मस्जिद, मूर्ति, छापा-तिलक, पंडित, मंत्रादि किसी कर्मकांड की कोई जगह न थी। कबीर ने समाज को अहसास दिलाया कि भक्ति और भगवान किसी की पैतृक संपत्ति नहीं है। उस पर सभी का अधिकार है। भक्ति के लिए किसी विशेष क्षण, तिथि, वेशभूषा, कर्मकांड, स्थान की आवश्यकता नहीं होती। कहीं भी, किसी भी वक्त सोते-जागते, खाते-पीते, घर बैठे, काम करते भक्ति की जा सकती है। बशर्ते उसमें सच्चाई, सरलता और प्रेम निहित हो। कबीर के अनुसार भक्त और भगवान का प्रेम स्वार्थहीन होता है। सच्चे प्रेम से भगवान को पाया जा सकता है। कबीर भक्ति में प्रेम को अत्यंत महत्वपूर्ण मानते हैं, क्योंकि प्रेम के अभाव में भक्ति निरर्थक और दंभमात्र है। [5,7,8]

पाखंडी ही ईश्वर को पाने के लिए पूजा-व्रत, तीर्थ, मक्का-मदीना, मंदिर तीर्थादि में भटकते फिरते हैं। फिर भी उन्हें ईश्वर नहीं मिलते। हिन्दू चौबीस एकादशी के व्रत और मुसलमान रमजान का एक महीना रोजा रखते हैं। उनसे कबीर पूछते हैं साल के दूसरे दिन ईश्वर कहा जाते हैं? हिन्दू पूर्वाभिमुख करते हैं और मुसलमान पश्चिमाभिमुख होकर नमाज पड़ते हैं। कैसे राम का देश पूर्व और रहीम का पश्चिम हो सकता है? राम और रहीम तो एक ही हैं। राम-रहीम की एकता का प्रतिपादन कर सारे देश को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया। उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य और भेदभाव की चौड़ी खाई को पाटने का कुशल प्रयास किया। मध्यकालीन समाज में मुगलों के आधिपत्य और अत्याचारों के परिणामस्वरूप हिन्दू-मुसलमान विद्वेष ने आग पकड़ी होगी। परन्तु यह समस्या तो आज लगभग पाँच सौ साल बाद भी ज्यों की त्यों है। देश सांप्रदायिक दंगों के घाव आए दिन झेल रहा है। दोनों धर्मों के नाम पर आपस में घात-प्रतिघात हेतु तत्पर रहते हैं। धर्म का वह स्वरूप लुप्त सा हो गया है जो हिन्दू और मुसलमान संप्रदाय में प्रेम, सौहार्द, भाईचारा एवं मानवता को बढ़ावा दें। ऐसे में कबीर पुनः प्रेरणा बनकर उभरते हैं –

"दुइ जगदीश कहाँ ते आए,कहु कौन भरमाया।
अल्लाराम करिम केशव हरि, हजरत नाम धराया॥"[3]

कबीर ने पवित्रता और श्रेष्ठता का ढोंग करने वाले मुल्ला-मौलवियों तथा हिंदुओं की पोल खोल कर रख दी है। हिन्दू स्वयं को श्रेष्ठ, ऊंच कुल का मानकर अछूतों के हाथों का पानी भी नहीं पीते। परंतु दूसरी ओर वेश्याओं के चरणों में पड़े रहते हैं। यही हिन्दुत्व है? दूसरी और मुसलमान भी अपने ही घर में सगाई करते हैं। मांसाहार करते हैं और पवित्रता का ढोंग करते हैं। यही इस्लाम है? दोनों ही धर्म के अनुयायी चारित्रिक दृष्टि से भ्रष्ट हैं। उनकी कथनी और करनी में पर्याप्त अंतर हैं। उनकी दृष्टि में जो सच्चा भक्त होता है वह सभी प्रकार की संकीर्णताओं, ऊँच-नींच, भेदभाव तथा अहं से ऊपर उठकर मानवता का संदेश देता है।

कबीर ने निर्गुण भक्ति के द्वारा धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक मुक्ति के प्रश्नों को उठाया। उसके मूल में मानवमात्र की समता, स्वतन्त्रता एवं भातृत्व की भावना प्रमुख थी। इसने समाज के उपेक्षित और प्रताड़ित वर्ग में आत्मसम्मान की भावना जगाई। जिसने वैचारिक संघर्ष को जन्म दिया। अतः कबीर की निर्गुण भक्ति और उसका उद्देश्य मध्ययुग में जितना प्रासंगिक था, आज भी उतना ही प्रासंगिक बना हुआ है। स्वतंत्र भारत में वैधानिक रूप से सभी को समता, स्वतन्त्रता एवं समाधिकार प्राप्त हैं। बावजूद इसके समाज का एक विशाल वर्ग भेदभाव, छुआछूत, अशिक्षा, गरीबी से ऊबरा नहीं है। उनके

लिए समता और स्वतंत्रता के मायने क्या होंगें? इस पर रवीद्र कुमार सिंह लिखते हैं- "संविधान में समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के अधिकारों की गारंटी के बावजूद व्यवहारिक दृष्टि से असमानता, पराधीनता और पारस्परिक विरोध को ही बढ़ावा मिल रहा है। ऐसी स्थिति में संत कवियों की वैचारिक संघर्ष चेतना, उनकी जनतान्त्रिक अवधारणा, समानता और भाई-चारे के आदर्श आदि हमारे लिए संघर्ष का एक नया मार्ग प्रस्तुत करते हैं। यह संघर्ष विभिन्न राजनीतिक-सामाजिक संगठनों के साथ ही साहित्य और कला के मोर्चे पर भी तेज़ हुआ है। अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि आज की परिस्थितियों में संत-काव्य की प्रासंगिकता अधिक बढ़ रही है।"[4]

कबीर ने मध्ययुग में एक ऐसे सामाजिक, सांस्कृतिक, वैचारिक आंदोलन का सूत्रपात किया जो वर्तमान में वर्ग-विहीन समाज की ओर अग्रसर होने के लिए नितांत प्रासंगिक है। उन्होनें जिन विसंगतियों, वर्जनाओं, कुरीतियों एवं कुप्रथाओं के खिलाफ आजीवन संघर्ष किया वे आज भी यथावत हैं। कबीर युगीन समाज को रूढ़ियों, विकृतियों एवं अंधविश्वास ने खोखला कर दिया था। धर्म एवं भक्ति में बाह्याडंबरों की बहुलता थी। समाज की ऐसी दशा से वे विचलित हो उठे थे। कबीर के अनुसार आडंबर ही समाज में लड़ाई-झगड़े, संकीर्णता और असहिष्णुता के कारण बनते हैं। आडंबरों से समाज में कभी स्थायी सुख, शांति एवं भाईचारे की बहाली नहीं हो सकती। समाज को एक सूत्र में बांधने के लिए उन्होंने धर्म एवं भक्ति के बाह्याचारों का कड़ा विरोध कर सात्विक भक्ति पर जोर दिया। आज भी स्थिति बदली नहीं है।[9,10,11] धर्म और भक्ति का रूप और विकृत होता जा रहा है। इनमें व्याप्त दिखावा, बाह्याचारों की प्रदर्शनी, बड़प्पन की मानसिकता ने समाज में संकीर्णता, असहिष्णुता, एवं धार्मिक अराजकता को बढ़ावा दिया है। हमारे तीर्थ स्थानों पर भक्ति नहीं लूट मची है। अतः कबीर आज भी प्रासंगिक हैं-

"मोको कहां ढूंढत बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कौनो क्रिया करम में, नहीं जोग बैराग में॥"[5]

कबीर ने देखा कि तत्कालीन समाज में हिन्दू-मुसलमान दोनों ही अपने रास्ते से भटक गए थे। उनमें, बाह्याचारों की प्रधानता थी। सत्य, अहिंसा, त्याग, संतोषादि मूल्य विकृत हो चुके थे। उनमें अपने धर्मों को लेकर मिथ्या दंभ एवं श्रेष्ठता बोध हावी होती जा रही थी। ऐसी मानसिकता को बढ़ावा देने वाले मुल्ला-मौलवी और पंडितादि थे। अतः कबीर ने इनकी तीखी आलोचना की। ईश्वर घट-घट व्यापी हैं। उसे पाने के लिए किसी दिखावे की आवश्यकता नहीं। कबीर कहते हैं कि मुसलमान दिन भर रोजा रखते हैं और रात को गाय मारते हैं। कहाँ भक्ति और कहाँ हत्या? ऐसे परस्पर विरोधी कर्मों से ईश्वर कैसे खुश होंगे –
"दिन में रोजा रहत हैं, रात हनत हैं गाय।
कहं हत्या कहं बंदगी, कैसे खुशी खुदाय॥"[6]

कबीर ने हिन्दू समाज में व्याप्त भेष, तिलक, माला, योगाचार, व्रत, उपवास, श्राद्ध, तीर्थयात्रा तथा अन्य अनेक अंधविश्वासों की तीव्र आलोचना की। उनकी आलोचना और विरोध युक्ति संगत एवं तर्कयुक्त हैं। कबीर ने भगवाधारी ठगों से भी समाज को सावधान किया है। उनके अनुसार केवल संतों जैसे वस्त्र धारण करने या दिखने से कोई संत नहीं होता। प्रवृत्ति एवं व्यवहार में संत होना आवश्यक है। वर्तमान समाज में भी ऐसे भगवाधारियों की कमी नहीं है। कहने को तो संत हैं लेकिन आये दिन भोग–विलास, झूठ-फरेब, सूरा-सुंदरी जैसे चारित्रिक, नैतिक पतन के गहरे गर्त में डूबे हुए हैं। आश्चर्य तो तब अधिक होता है जब इन ढोंगियों के पीछे हमारा शिक्षित-बुद्धिजीवी वर्ग हाथ जोड़े घूमता है। अतः आज फिर से कबीर को आत्मसात करने की महती आवश्यकता है –
"साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिं॥"[7]

कबीर समाज में प्रचलित अंधविश्वासों को उखाड़ फेंकना चाहते थे। हिंदुओं में यह विश्वास प्रचलित था कि काशी में मृत्यु होने पर स्वर्ग और मगहर में होने पर नरक की प्राप्ति होती है। इस अंधविश्वास को तोड़ने के लिए उन्होंने स्वयं मगहर में महानिर्वाण लिया। उनका मानना है कि व्यक्ति अगर जीवन भर भक्ति नहीं करता। अच्छे कर्म नहीं करता तो केवल काशी में हुई मृत्यु से उसे स्वर्ग लाभ नहीं हो सकता। कबीर निष्ठाहीन व्यक्ति न थे। प्रेम, विनय, श्रद्धा, अहिंसा, सच्चाई, करुणा, दया, ममता जैसे मानवीय मूल्यों के प्रति उनमें अपार विश्वास है। किन्तु उनकी श्रद्धा और निष्ठा तर्क पर आधारित है। तर्कहीन अंधविश्वास तथा रूढ़ियों के वे विरोधी रहे हैं।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.379 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 9, Issue 6, November 2022 |

इसी तरह कबीर श्राद्ध जैसे लोकाचारों का भी विरोध करते हैं। जब तक अपने माता-पिता या परिवार के बिजुर्ग जीवित हैं। उनकी सेवा-देखभाल करनी चाहिए। उन्हें पूरा सम्मान और प्रेम देना चाहिए। मगर अक्सर देखा जाता है कि परिवार में बुजुर्ग उपेक्षित होते हैं। ऐसी अवस्था में उनके मृत्योपरांत किया जाने वाला श्राद्ध व्यर्थ है। पितरों के नाम पर होने वाले श्राद्ध में पितर आकर क्या खाते हैं? वह अन्नादि तो कौवें और कुत्ते खाते हैं –

"जीवत पितर न मानै कोऊ, मुए सराद्ध कराही।
पितर भी बपुरे कहु क्यों पावहिं, कौवा कुकुर खाहीं॥"[8]

कबीर के ये विचार आज और प्रासंगिक हो गए हैं।[12,13,15] आज के भागदौड़ के जीवन में व्यक्ति मशीन की तरह संवेदनहीन बनता जा रहा है। सब कुछ अकेले भोग करने की लालसा ने एकल परिवारों को बढ़ावा दिया है। माँ-बाप, सास-ससुर बोझ बनने लगें। अतः बिडम्बना है कि जिस गति से मनुष्य प्रगति के सोपानों को छू रहा है। वृद्धाश्रमों की संख्या भी तेजी से बढ़ रही हैं। जीवित रहते वक्त कोई नहीं पूछता सगे-संबंधियों को। घर में विद्यमान साक्षात पितरों को भर पेट अन्न और प्रेम के दो बोल नसीब नहीं होते। मृत्योपरांत उनके नाम पर पिंड भर-भर दक्षिणा किये जाते हैं। जिनका कोई अंश पूर्वजों तक नहीं पहुंचता। कौवे-कुत्ते खा जाते हैं।

कबीर को मृत्यु से डर न था। वे इस रहस्य को समझ चुके थे कि मृत्यु अनिवार्य है। इस ज्ञान ने उन्हें निर्भय बना दिया था। यही कारण था कि उन्होंने सदैव अधर्म, अन्याय और असंगतियों का विरोध किया। मुल्ला, मौलवियों, पंडितों और जोगियों से भी उलझ पड़ते थे। मृत्यु के भय से कभी सत्य का दामन नहीं छोड़ा –

"जा मरने से जग डरे मेरे मन आनंद।
कब मरिहौं कब पाइहों पूरन परमानंद॥"[9]

कबीर के ये विचार आज भी प्रासंगिक हैं। जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु निश्चित है। अतः मनुष्य को चाहिए कि सत्य का साथ दे। मृत्यु करीब है यह जानकर सभी से प्रेम तथा सदभाव रखें। तेरा-मेरा की दौड़ में जीवन को नष्ट क्यों करें? मनुष्य जीवन की क्षणभंगुरता को भूलकर अपने सुखों को चिरस्थायी बनाने हेतु रात-दिन मारा-मारी करता फिर रहा है। अपने लब्ध सुखों के आनंद को भी व्यर्थ कर दिया है। कबीर की दृष्टि में संसार व्यर्थ नहीं है बल्कि मनुष्य ने अपनी अज्ञानता के कारण इसे दुखदायी बना दिया है। लोभ-लालच के कारण यहाँ छिना-झपटी, लूट-मार मची हुई है। फलस्वरूप ढोंग, छल-कपट, चमत्कार प्रदर्शन की होड़ लगी हुई है।

आज हम कोरोना महामारी की विकट परिस्थितियों से गुजर रहे हैं। जहाँ जीवन-मरण के संग्राम में मानवता चित्कार उठी है। दवाइयों, ऑक्सीजन, स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव में सांसे टूट रही हैं। ऐसे में भी समाज का एक वर्ग ऑक्सीजन, दवाई आदि की कालाबाजारी कर रहा है। हमारी मानवता और मानवीय संवेदनाओं पर भौतिकवादी सोच हावी हो गई है। अपने स्वार्थ के लिए मनुष्य बड़े से बड़ा अमानवीय कृत्य करने को भी तत्पर दिखता है। ऐसे में कबीर फिर से पढ़े और समझे जाने चाहिए। जीवन की सार्थकता एवं व्यर्थता के उनके विचारों को पुनः आत्मसात करने की आवश्यकता आ पड़ी है।

मनुष्य जिस धन-संपत्ति को प्राप्त करने के लिए अपना सब कुछ बर्बाद कर देता है। कबीर के अनुसार उस धन का जीवन में कोई लाभ नहीं मिलता। क्योंकि वह नैतिक-अनैतिक तरीके से कमाया हुआ होता है। धन के आधिक्य से भोग-विलास बढ़ता है और जीवन में पतनशील मूल्यों की वृद्धि होती है। भौतिक समृद्धि से कोई बड़ा या महान नहीं हो सकता। खजूर का पेड़ कितना भी ऊँचा क्यों न हो जाएँ, वह सामान्य लोगों को फल और छाया प्रदान नहीं कर सकता। अतः कबीर धन का मूल्य सामाजिक उपयोगिता से आंकते हैं। जरूरतमंदों के प्रति स्नेहपूर्वक उनकी जरूरतों को पूरा करने वाला व्यक्ति ही बड़ा होता है। कबीर यह भी कहते हैं कि धन अधिक होने पर पारिवारिक आत्मीयता, शांति तथा स्नेह नष्ट हो जाती है। सज्जन वही होता है जो अपने दोनों हाथों से गरीबों पर धन खर्च करें, क्योंकि वे अपने लिये धन एकत्र नहीं करतें –

" वृक्ष कबहुँ नहिं फल भखे नदी न संचय नीर।
परमार्थ के कारने साधुन धरा सरीर॥"[10]

कबीर आर्थिक स्वार्थ को त्यागकर संयमित होने की शिक्षा देते हैं। मनुष्य अपनी जरूरत के अनुसार ही धन संचय करें। तभी समाज में समता, नैतिकता एवं मानवता की बहाली हो सकेगी। आर्थिक स्वार्थ से नैतिकता का ह्रास होता है। [9,10,11]

पुस्तकीय ज्ञान के महत्व पर भी कबीर के विचार अत्यंत प्रासंगिक हैं। आज शिक्षा के कई आयाम हैं। तकनीकी विकास के साथ समृद्ध शिक्षा प्रणाली का दंभ भर रहें हैं। बड़े से बड़े प्रमाणपत्र प्राप्त कर बुद्धिजीवियों की पंक्ति में खड़े हैं। सवाल यह है कि हम कैसी शिक्षा का दंभ भर रहे हैं? जो नैतिक एवं मानवीय शिक्षा से परे केवल मानव रूपी मशीन तैयार कर रहा है। स्वार्थ, संवेदनहीनता से लबरेज मनुष्य जीवन के सत्य से भटक रहा है। कबीर स्वयं पढ़े-लिखें नहीं थे। अनपढ़ और नीच जाति से होने के कारण काशी के पंडितों से उलाहना पाते रहें। कबीरकालीन समाज तथा आज भी लोगों में अंधविश्वास व्याप्त है कि पढ़ा-लिखा व्यक्ति ही पंडित, विद्वान होता है। कबीर इस धारणा को तोड़ते हुए कहते हैं कि सच्चा पंडित पुस्तकीय ज्ञान से नहीं बनता, बल्कि प्रेम में डूबकर बनता है। वे पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा जीवन के अनुभव तथा सच्चे प्रेम को महत्व देते हैं –

"पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोई।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होइ॥"[11]

विचार-विमर्श

कह सकते हैं कि कबीरकालीन विकृतियों, असंगतियों, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों से आज भी हमारा समाज मुक्त नहीं हो पाया है। जात-पांत, छुआछूत, सांप्रदायिकता, अशिक्षा, गरीबी जैसी विषमताएँ जड़ जमाये बैठी हैं। आर्थिक स्वार्थ, दंभ, नैतिक पतन ने व्यक्ति को संवेदनहीन और स्वार्थी बना दिया है। शोषण, उत्पीड़न, झूठ, फरेब आज और भयानक रूप में देखा जा सकता है। अतः कबीर के समता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व गढ़ने के विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। जिन मानवीय मूल्यों की स्थापना हेतु वे जीवनभर संघर्षरत रहें, उस संघर्ष की लौ को फिर से जीवित रखने की आवश्यकता आ पड़ी है। प्रेम, मानवता, सद्भाव, सौहार्द और नैतिकता की बहाली के लिए कबीर के विचारों का पुनः अनुसरण समय की मांग है। "वे हर जेल के खिलाफ 'आजादी' हैं, हर सत्ता के खिलाफ सृजनधर्मी विपक्ष हैं। कठमुल्लापन और पुरोहितवाद, कट्टरपंथ के खिलाफ अब कबीर के विपक्ष की जरूरत है।"[12]

कबीर काव्य की पृष्ठभूमि-निर्माण में कबीर का व्यक्तिगत जीवन विशेष सहायक रहा है। जन्म स्थान काशी का धर्मान्ध वातावरण, माता-पिता के कारण प्राप्त विरोधी संस्कार, पारिवारिक जीवन से असन्तुष्टि, जातिगत विद्रोह, जुलाहा व्यवसाय, पर्यटनशीलता, अशिक्षा और रामानन्द जैसे गुरू की दीक्षा इन सब ने एक साथ मिलकर कबीर-काव्य का स्वरूप निर्मित किया है। कबीर का नाम नामदेव और ज्ञानदेव आदि सन्तों की परम्परा में आता है। इन सन्तों का प्रमुख लक्ष्य समाज के निम्न वर्ग को जागृत करके उच्च वर्ग के सम स्तर पर लाना था। ऊँच-नीच, जाति-पाति का विरोध करके इन्होंने एकता तथा समानता का सन्देश दिया था। कबीर के काव्य में भेदभाव विहीनता, सर्वात्मवाद, निर्गुण भक्ति, कर्म और वैराग्य का समन्वय, अनन्य प्रेम भावना, नाम साधना, सेवक सेव्य भावना इत्यादि अनेक बातें सन्त नामदेव के प्रभाव स्वरूप भी आई हैं। कबीर उच्च दृष्टिकोण वाले संत थे उनका सामाजिक चिन्तन जनसामान्य, समाजोन्मुख तथा उत्थान के लिए है। निर्गुण निराकार के उपासक संत कवियों ने समाज में व्याप्त बुराईयों रूढ़ियों, कुरीतियों से साधारण जनता को निजात दिलाने का प्रयास किया। कबीर की तरह ही गुरूनानक देव, रैदास, धर्मदास, दादूदयाल, सुन्दरदास, मलूकदास आदि संतो ने भी समाज के सन्मार्ग पर चलने का संदेश दिया। मानवता, मनुष्यता आदि संवेग कबीर के मन की हितैषणा को जाहिर करते हैं। उनके उपदेश उनकी वाणी में समाज का हित छिपा हुआ है। कबीर की वाणी मूलतः अपने मौखिक रूप में ही रही है। उन्होंने स्वयं उन्हें लिपि बद्ध नहीं किया। माना गया है कि कबीर के शिष्य धर्मदास ने उनकी बानियों का संग्रह 'बीजक' नाम से किया था। इसमें साखी, शबद और रमैनी तीन छन्दों में लिखित रचनायें है। 'आदि ग्रन्थ' एवं 'गुरूग्रन्थ साहब' में भी कबीर की वाणी संकलित है।[7,8,9]

भक्तिकाल को सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण का काल माना जाता है, जिसमें प्रगतिशीलता सामाजिक उन्नयन के रूप में सामने आयी। कबीर ने अपने विचारों से समाज को जितना अधिक प्रभावित किया उतना और किसी ने नहीं। आज भी कबीर की सामाजिक दर्शन उतनी ही प्रासंगिक है जितनी भक्तिकालीन समय में थी। कबीर ने जिस निर्भीकता और साहस के साथ अपनी वाणी प्रवाहित की, उनकी प्रबल आत्मवत्ता का उदाहरण आज भी है। अपने समय की सामाजिक कुरीतियों, व्याप्त असमानता को कबीर ने यथार्थ के धरातल पर महसूस किया। उनकी वाणी से निकले शब्द स्वानुभूत सत्य से जुड़े थे, उन्होंने स्वयं ही सामाजिक यंत्रणाओं को भोगा था। उनका भोगा हुआ यथार्थ ही उनकी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनी। कबीर को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा था। तत्कालीन समय में जिस जीवटता के साथ वे समाज को बदलने निकले थे वो अपने आप में ही एक चुनौती है। जातिगत, धर्मगत, वर्गगत, वर्णगत, सम्प्रदायगत जो कटुता समाज में व्याप्त थी उससे अकेला कबीर जीवन पर्यन्त संघर्ष करता रहा कबीर ने कब और कैसे इन सामाजिक भेद-विभेद से संघर्ष किया उसे सरल ही समझा जा सकता

है। कबीर ने सभी मानव को एक ईश्वर की संतान माना। उन्होंने ईश्वर की पूजा करने का अधिकारी सभी को माना है और इसका विरोध करने वालो को झूठा कहा है –

"पण्डित वाद बदौ सो झूठा"1

जातिगत संघर्ष एवं चुनौती जाति के आधार पर समाज का बँटवारा और सार्वजनिक द्वारा उसे मान्यता देने के बाद 'जाति' से सबंधित विभिन्न दृष्टिकोणों से कबीर को दो-चार होना पड़ा। कबीर का कार्य क्षेत्र तो भक्ति ओर उपासना का था और यहाँ पर भी भेदभाव उन्हें सबसे ज्यादा अखरता था। कबीर ने हमेशा कर्म और परिश्रम को महत्व दिया। वे मेहनत से जीवन यापन करने, परिश्रम से धन प्राप्ति करने और बेवजह धन संग्रह करने के घोर विराधी थे –

"सांई इतना दीजिए, जामें कुटुम समाय।

मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाए।।"2

माया, धन, सम्पति आदि का लालच करने वालों को कबीर ने भटका हुआ राही कहा है। कबीर एक सशक्त क्रांतिकारी भी थे। तद्युगीन समाज के वातावरण को देखते हुए उन्होनें प्रत्येक क्षेत्र में क्रांति और परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव की। समाज और धर्म के प्रत्येक क्षेत्र में पुरातन व गलित रूढ़ियों को नष्ट एवं समाज के भेद-भाव तथा बाह्याडम्बरों को दूर करने के लिए वे निर्भीक होकर सामने आये। समाज सुधार उनके अन्तस की प्रेरणा थी। इसलिए उनमें यह निर्भीकता स्वतः आ गई। बड़ी से बड़ी शक्ति उन्हें उनके कार्य से विमुख न कर सकी। धर्म, सम्प्रदाय, जात-पात, ऊँच-नीच, छुआ-छूत, माया, सम्पत्ति का संग्रह को कबीर ने सामाजिक कुरीति माना है। वे नवजागरण के प्रणेता थे। वो 'सत्य' को ही धर्म मानते थे। ईश्वर में विश्वास रखते थे, भगवद् प्रेम को ही सर्वश्रेष्ठ मानते थे, वाणी की शीतलता पर बल देते थे –[1,2,3]

"ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोइ।
औरन को सीतल करै, आपहुँ सीतल होइ।।"3

आज के भौतिकवादी युग में मानव जाति वाणी की शीतलता और आपा दोनों ही दिन-प्रतिदिन खोते जा रहे हैं। एक इंसान दूसरे इंसान के महत्व को भूलते जा रहे हैं। कबीर की सामाजिक दर्शन आज भी उतनी ही प्रासंगिक लगती है जितनी पहले थी।

कबीर की लोक चिन्ता स्वीकृत पखाण्डी धर्मों से अलग एक नयी विचारधारा को स्वीकार तथा नये मार्गों का अनुसंधान करने के लिए थी। अपने समय के श्रेष्ठ जनवादी कवि थे। कविता उनका उद्देश्य नहीं अपितु साधन मात्र थी, मूलतः वे एक चिन्तक, सुधारक तथा लोकवादी विचारक थे। अपढ़ होते हुए भी कबीर का संपूर्ण साहित्य अशिक्षित लोगों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। जनकल्याण का भाव उनकी रग-रग में था। कविता करना उनका ध्येय नहीं अपितु कविता तो उनके लिए फोकट का माल है। समाज को परिवर्तित करने पर कविता साधन की तरह प्रयुक्त हुई। सामाजिक दोषों पर कबीर ने व्यंग्य भी किये। कई रूढ़ियों, परम्पराओं, धार्मिक आडम्बरों पर कबीर ने अपने शब्द बाण से प्रहार कियें हिन्दुओं की मूर्ति पूजा, मुस्लिमों का नमाज़ आदि का उन्होनें कट्टर विरोध किया। कबीर की निर्भीकता, बड़बोलेपन और ओजपूर्ण वाणी ने मृत प्राय लोगों में प्राणों का संचार किया। कबीर ने मनुष्य की मनुष्यता को सर्वश्रेष्ठ माना है। तत्कालीन राजाओं को धार्मिक रूढ़ियों, आडम्बरों अमानवीय अंध महाशक्तियों को ललकारा था। लोकशक्ति उनके साथ जुट आयी थी। साधारण जनों का विश्वास जीतकर उन्होंने लोकवासियों को गहराई से जाना जाता था।

आज के परिवेश में कबीर का अक्खड़पन प्रासंगिक है। उनकी फटकार और पुचकार दोनों मे वह शक्ति विद्यमान हैं जो साधारण जनमानस को आकर्षित करती है। कबीर के उपदेश, उनकी शिक्षाएँ समाज को एकत्र करनेका काम करती हैं। वे लोगों को अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने के लिए कहते हैं, पूजा-पद्धतियों से बाहर निकलने को कहते हैं, 'लोका तुम हो मति के भोरा' भ्रमित जनता को रास्ता दिखाने का कार्य कबीर के उपदेशों उनकी ज्ञानपरक वाणी से आगामी वर्षों में भी किया जाता रहेगा। कबीर ने मनुष्य को ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना माना उन्होनें सभी को एक ही ईश्वर की संतान माना। इस देह में सांई बसते हैं, सभी के मन में एक ही ज्योति व्याप्त है, एक ही तत्व सर्वत्र विद्यमान है। तो भी लोक जाति-पांति, छुआ-छूत, धर्म आडम्बर के भेदभाव को मध्य में रखकर अज्ञानता की ओर बढ़ता है। इसीलिए कबीर ने मानव को विवेक और बुद्धि से सीखने का मार्ग बताया। वे मानव जीवन को संवारना चाहते हैं, वे मनुष्य के हृदय में गहरे उतरकर उसे सत्य की ओर ले जाना चाहते है। उनके लिए सत्य से बड़ा कोई तप नहीं। प्राणि मात्र से प्रेम, दया, करूणा का भाव रखना ही सबसे बड़ा धर्म है। कबीर मानव स्वभाव की कवियों तथा चित्त की चंचलता को भी इंगित करते हैं। कबीर के अनुसार सर्व साधारण को संतोषरूपी धन की प्रबल आवश्यकता है। वे कहते हैं –

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.379 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 9, Issue 6, November 2022 |

"कबिरा खड़ा बाजार में, सबकी चाहे खैर।
न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर।।"4

कबीर ने हमेशा समय से आगे की ओर रूख किया। उनकी दूरदर्शिता इसी बात में प्रकट होती है कि उन्होनें समय से आगे की बात कही साम्प्रदायिक दंगे, धार्मिक भेदभाव इन सभी की भयावहता को कबीर ने समझा लिया था। शायद इसीलिए उन्होनें बार-बार एकता पर बल दिया। आज भी समाज इन मानसिक बेड़ियों से जकड़ा हुआ हैं आज भी कबीर जैसे चिन्तक की जरूरत है। आज की परिस्थितियाँ कबीर के चिन्तनात्मक मस्तिष्क की व्यापकता का बोध कराती हैं। आधुनिक संदर्भो में कबीर द्वारा कही गयी बातों का नैतिक मूल्य है। वास्तव में कबीर ने मनुष्य को मूल्य परक जीवन जीने की राह दिखाया। केवल यही कारण है कि समय के साथ परिवर्तन केवल बाहरी रूप में हुआ, आंतरिक रूप से हर व्यक्ति की मनः स्थिति अभी भी भ्रमपूर्ण है। एक नियत और निश्चित रूप को तय कर पाना अभी असम्भव लक्ष्य है कबीर की सोच, उनका चिन्तन यदि अंशतः भी क्रियान्विति की ओर बढ़ता तो आज समाज का ढाँचा किसी मजबूत आधार पर खड़ा होता और अधिकारिक समाज का स्वरूप निश्चित होता।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कबीर का काव्य उनके व्यक्तित्व का मूर्त रूप है। उनकी अक्खड़ता, फक्कड़ता, निर्भीकता, स्पष्टवादिता, क्रांतिकारिता और अहंभाव आदि सभी विशेषतायें उनके काव्य में झलकती है जो युगों-युगों प्रेरणा देती रहेगी। कबीर के प्रभावशाली अद्वितीय व्यक्तितत्व ने स्वभाविक रूप में उनके काव्य में भी युगान्तकारी प्रभाव शक्ति का सृजन किया है जो आज के दौर में भी अति प्रासंगिक है।

परिणाम

आज जब हम चहुँओर व्याप्त सामाजिक जडता तथा अराजकता की ओर उन्मुख होते हैं तब व्यवस्था के विरुद्ध क्रांति का शंखनाद करने के लिए युगपुरुष की आवश्यकता महसूस करते हैं। कबीर का कालजयी व्यक्तित्व इस समय हमारे लिए ज्योतिपुंज है। आज से लगभग 600 वर्ष पूर्व 1397 ई. में काशी में जन्मे कबीर आजीवन अथक प्रयासों से समाज का मार्गदर्शन करते रहे। वे जुलाहा कर्म को अपनाकर ग्राहस्थ जीवन के साथ संत बनकर 'समाज सुधार' का कार्य भी करते रहे।

कबीर लोकलाज बचाने के लिए त्यागे गये तथा नीमा और नीरु मुस्लिम जुलाहे द्वारा पालित पोषित पुत्र थे। आजीवन संघर्ष उपरान्त उन्होंने अपना देह त्याग मगहर में किया। जिसका संदेश उस अंधविश्वास को मिटाना था कि यहाँ मृत्यु होने पर व्यक्ति अगले जन्म में गधा बनता है। जो लोग जीवनभर कबीर के विरोधी थे उनकी मृत्युपरांत शव को लेकर हिन्दू-मुस्लिम आपस में उलझे। कबीर की उलटबाँसिया आगे चलकर हिन्दू संतों, पीरों, फकीरों, 'गुरुग्रंथसाहिब' आदि की जुबान बनी अर्थात् कबीर का सम्पूर्ण जीवन ही उनका संदेश है। [5,7,8]

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार जातिवाद भारतीय समाज का सबसे बडा कोढ है। यहाँ समय के साथ सब चीजें नष्ट हो जाती हैं, लेकिन 'जाति' एक ऐसी चीज शब्द है जो कभी नहीं जाती। सोपानीकृत अवस्था में स्वर्ण, अवर्ण, अस्पृश्यता, ऊँच- नीच आदि से जर्जर भारतीय समाज के विरुद्ध कबीर ने मुखर आवाज उठाई तथा मानव मुक्ति की बात की। जन्म के आधार पर भेदभाव को वे अमान्य ठहराते हैं –

जो तू बामन बामनि जाया, आन बाट तैं काहे न आया ।

वे आम आदमी की आवाज थे। उन्होंने निम्नवर्गीय चेतना को शब्द दिये। कबीर ने जन्म/जाति या कुलगत उच्चता के बजाय कर्म तथा विचारों की उच्चता को प्रतिष्ठा दी। उन्होंने एक आदर्श समाज का सपना देखा एवं जो वर्णभेद जैसी मानव-मानव को अलग करने वाली परम्पराओं का खण्डन किया। आज जब जाति का बोलबाला है, तब कबीर द्वारा जातिवाद के विरुद्ध की गयी इस एकतरफा लडाई की याद आती है। वे आमजन की आवाज थे तथा अंधकारयुग के जन नेता थे।

धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक भारत के लिए हमें आदर्श समाज की रूपरेखा कबीर के संदशों में मिलती है। हिन्दू समाज द्वारा बहिष्कृत तथा मुस्लिम समाज द्वारा तिरस्कृत कबीर ने ईश्वरीय एकता की बात कही। उन्होंने धर्म के नाम पर भेदभाव तथा ईश्वर के नाम पर लडाई का ताकिर्क खण्डन किया। कबीर के राम निर्गुण एवं निराकार ईश्वर थे। उन्होंने उसे सबका प्रभु बनाया तथा मानव धर्म की प्रतिष्ठा की। उन्होंने आस्तिकों के ईश्वर, ईश्वरीय ग्रंथ, उपासना स्थल तथा अनुयायियों के नाम पर विभेद को नकारा तथा धार्मिक समन्वय की अवधारणा प्रतिपादित की।आज के धार्मिक वैमनस्य के वातावरण में कबीर के विचार प्रासंगिक हैं कि 'हिन्दू उसे राम कहता है। मुसलमान खुदा कहता है। तू उसकी परवाह न कर तब काबा काशी हो जाएगा और राम रहीम हो जाएगा।' यही कारण है कि जब कबीर की मृत्यु हुई तब उनके शव पर दावा प्रत्येक धर्मानुयायी ने किया तथा मगहर में उसका स्मारक धार्मिक समन्वय की मिसाल है।

कबीर अपने समय के क्रान्तिकारी प्रवक्ता थे। उन्होंने आडम्बरों, कुरीतियों, जडता, मूढता एवं अंधविश्वासों का तर्कपूर्ण खण्डन किया। कबीर का अपने युग के प्रति यथार्थ बोध इतना था कि उन्होंने हर एक परम्परा, रूढ, कुरीति तथा पाखण्ड को

यथार्थ के धरातल पर खारिज किया। अबुलफजल ने आइने अकबरी में लिखा है कि "कबीर ने समाज के सडे-गले रीति रिवाजों को नकार दिया। कबीर ने समाज सुधार के लिए कोडे खाए तो व्यंग्य तथा हँसी-ठिठौली द्वारा भी जनमानस में सुधार के प्रति सोच विकसित की।" उन्होंने आलोचना के साथ सृजन की रूपरेखा रखी। कबीर अराजकता, सामन्तवाद तथा उथल-पुथल के दौर में क्रान्तिकारी स्वप्नकार हैं। वे स्वभाव से संत थे, लेकिन प्रकृति से उपदेशक। उन्होंने अंधविश्वासों का उपहास कर ठीक निशाने पर चोट पहुँचाई। उन्होंने मूर्तिपूजा, तीर्थयात्र, अवतारवाद एवं कर्मकाण्डों का विरोध किया तथा ईश्वर और व्यक्ति के बीच किसी भी मध्यस्थ को अस्वीकार किया। उन्होंने हर रूढ को खारिज किया जो मानव-मानव में भेद कराती थी। आज के दौर में जब भौतिक साधनों हेतु भ्रष्टाचार, लूट- खसौट, मिलावटखोरी जैसे अपराध मानवता को झकझोर रहे हैं तब कबीर के ये विचार अति प्रासंगिक हैं –

सांई इतना दीजिए, जामे कुटुम्ब समाय ।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु ना भूखा जाये ।।

अर्थात् कबीर संग्रहवाद के बजाय अपरिग्रह को महत्त्व देते हैं। रामानन्द के शिष्य कबीर ने धार्मिक आडम्बरों के विरुद्ध आवाज उठाई और कहा कि –

कांकर पत्थर जोरि के मस्जिद लई बनाय ।
ता ऊपर मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय ।।

कबीर की उलटबाँसिया पग-पग पर मानव को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाती हैं, वे हर उस व्यवस्था का विरोध करते हैं जो मानव को अवनति की जंजीरों में जकडती है तथा उसे रसातल में ले जाती है।

कबीर ने मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा स्थापित की। उन्होंने धैर्य, सहिष्णुता, कर्मयोग, गुरु का सम्मान, प्रेम, मानवता, आत्मा की पवित्रता, दीन-दुखियों की सेवा, नैतिकता के पालन को मानवीय कर्त्तव्य माना। कबीर ने 'माली सींचे सौ घडा' के माध्यम से धैर्य के साथ कर्म को महत्त्व दिया। उन्होंने 'भृगु मारी लात' द्वारा क्षमा के महत्त्व तथा 'माटी कहे कुम्हार से' द्वारा सहिष्णुता का पाठ पढाया। कबीर सच्चे अर्थों में कर्मयोगी थे। उन्होंने समाज को सचेत किया कि निर्बल को मत सताओ नहीं तो उसकी हाय से सब कुछ नष्ट हो जायेगा –

निर्बल को न सताइये जाकी मोटी हाय ।
मुई खाल की श्वांस सौं लौह भसम हो जाय ।।

उन्होंने पलायन न करके समाज के बीच में रहकर गृहस्थ के रूप में कर्मयोगी बनकर समाज को शिक्षित किया। उन्होंने जुलाहा कर्म को अपनाकर सभी के समक्ष आदर्श रखा कि कोई भी व्यवसाय हीन नहीं है अर्थात् कर्म की महानता के वे साक्षात् प्रतीक थे। उन्होंने जीवन में कथनी और करनी की समानता को महत्त्वपूर्ण माना। वे दुःखी मानव की पीडा को स्वयं भोग रहे थे –

चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोए ।
दुई पाटन के बीच में साबुत बचा न कोए ।।

कबीर अनपढ थे, लेकिन वे लकीर के फकीर नहीं थे। वे यथार्थ जीवन के विद्वान् थे। वे कहते हैं –

मसिकागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ ।
चारिउ जुगन महातम् कबीर, मुखहि जनाई बात ।।

उन्होंने शिक्षा प्रणाली को पोथियों से बाहर लाकर प्रेम तथा यथार्थ पर आधारित किया –

पोथी पढ-पढ जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
ढाई आखर प्रेम का, पढै सौ पंडित होय ।।

उन्होंने कर्म तथा स्वावलम्बन की शिक्षा दी। कबीर वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा तर्कबुद्धि को सच्ची शिक्षा मानते थे। उनके यथार्थवाद पर हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, "कबीर ने कविता के लिए कविता नहीं लिखी, वह अपने आप हो गयी।" कबीर ने जनभाषा में जनता को शिक्षित किया। उनकी सधुक्कडी भाषा एक ओर मातृभाषा में विद्यार्थी को शिक्षित करने के लिए प्रेरित करती है, वहीं दूसरी ओर भाषायी पाण्डित्य, परायी भाषा में अपने लोगों से बात करना तथा भाषा के नाम पर विवाद पैदा करना आदि प्रवृत्तियों पर प्रश्नचिह्न लगाती है। [9,10,11]

आज 21वीं सदी के विश्व में भारत जहाँ अपनी पहचान स्थापित करना चाहता है, वहाँ स्थानीय समस्याएँ, नक्सलवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद के दौर में एक 'समग्र भारतीय व्यक्तित्व' के रूप में कबीर हमारे व्योम में जाज्वल्यमान नक्षत्र् हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के लिए लिखा है, "वे मुसलमान नहीं थे। हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे।

वैष्णव होकर भी वे वैष्णव नहीं थे। योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे भगवान् के नरसिंहावतार की मानव प्रतिमूर्ति थे। नरसिंह की भाँति वे असम्भव समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलन बिन्दु पर अवतरित हुए थे, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है और दूसरी ओर भक्ति मार्ग।" अकबर के दरबारी उर्फी ने उनके बारे में कहा है, "ऐसे रहो अच्छे और बुरों के साथ, ओ ! उर्फी, कि जब तुम्हें मौत आए, मुसलमान तुम्हारे शव को पाक पानी से नहलाये और हिन्दू उसका अग्नि संस्कार करें।''

यह कबीर का ही युग बोध है कि वे बीच बाजार में हाथ में जलता हुआ मुराडा लिये खडे हैं और सत्य की खोज में समाज के अग्रदूत बने हैं –

हम घर जारा आपना, लिए मुराडा हाथि ।
अब घर जालौ तास का, जो चलै हमारे साथी ।।

भारतीय परम्परा में वे आज जुझारू प्रेरणा के प्रतीक हैं एवं मानवता तथा भारतीयता के सच्चे पोषक हैं।

निष्कर्ष

संत साहित्य में अपभ्रंश व सिद्ध, जन साहित्य, नाथ पंथ और वैष्णव भक्ति आंदोलनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। संत नामदेव, गुरूनानक महाराज, दादूदयाल, सुंदरदास, रज्जबदास, मलूकदास, सहजोबाई इत्यादि का संत साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। परंतु इसमें कोई दो राय नहीं कि संत धारा साहित्य में कबीरदास अग्रिम अधिकारी रहे हैं। हिंदी संत काव्य की दृढ़ नीव रखने वाले कबीरदास हुए हैं। कबीरदास के साहित्य का मुख्य उद्देश्य कर्मकांड की विसंगतियों को दूर कर समतामूलक समाज की स्थापना करना रहा। कबीरदास एक संतकवि होने के साथ ही एक समाज सुधारक की भूमिका में भी थे और जातिविहीन समाज व नारी अधिकारों के सचेतक थे।

संत साहित्य का प्राण तत्त्व है-लोक धर्म। सत रुपी परम तत्व का साक्षात्कार कर लेने वाले व्यक्ति को संत कहा जाता है। डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने संत का संबंध 'शांत' से माना है और इसका अर्थ निरूपित किया है – निवृत्ति मार्गी या वैरागी। सामान्यत: सदाचार के लक्षणों से युक्त व्यक्ति को संत कहा जाता है। जो आत्मोन्नति एवं लोकमंगल में रत हो। इस अर्थ में अगर देखें तो 'कबीरदास' भक्तिकाल के महान कवि, समाज सुधारक थे; जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा तत्कालीन समाज को एक नई दिशा देने का प्रयास किया। आज की विचाराधारात्मक उठा-पठक और सामाजिक समस्याओं के बीच अनेक बार कबीर की बानियों के हवाले दिए जाते है। उनकी उक्तियों की सार्थकता बतायी जाती हैं। आज भी हिंदू समाज की सवर्ण या दलित समस्याओं या मुस्लिम कट्टरपंथी समस्याओं से लड़ने हेतु कबीरदास अक्सर याद किए जाते हैं।[12,13]

'कबीर' भक्तिकाल के महान कवि, समाज सुधारक थे; जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा तत्कालीन समाज को एक नई दिशा देने का प्रयास किया। यह कबीर के साहित्य की ही देन है कि इतने वर्षों बाद भी हम उनकी रचनाओं में अपनी समस्याओं का हल देखते हैं। कबीर के साहित्य की प्रासंगिकता दो दृष्टियों से है:-

· प्रथमत : साहित्य चाहे किसी भी काल का हो यदि वह वास्तविक साहित्य है तो सदा प्रासंगिक रहेगा। पठनीय रहेगा।
· द्वितीयत: उसका कथ्य, संदेश हैं। कबीर ने अपनी रचनाओं के द्वारा एक कथ्य और संदेश देने का प्रयास किया जो आज भी प्रासंगिक है और इन्हीं कथ्य, संदेशों के द्वारा कबीर प्रासंगिक है।

कबीरदास की रचनाओं पर बीती आधी सदी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'कबीर' तथा नामवर सिंह ने 'दूसरी परंपरा की खोज' नामक पुस्तक में कबीर की पुन: प्रतिष्ठा में काफी कुछ लिखा है। इससे पूर्व भी कबीरदास जी के ऊपर कविगुरू रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचना 'वन हंड्रेड पोयम्स ऑफ कबीर', जिसमें संत कबीरदास जी के दोहे का अंग्रेजी अनुवाद है। 'वन हंड्रेड पोयम्स ऑफ कबीर' अपने पहले संस्करण के समय से ही लगातार छप रही है तथा इसने पश्चिम में कबीर की लोकप्रिय छवि स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वर्ष 1910 में ही जब टैगोर अंग्रेजी में लिख रहे थे, तब उन्होंने कबीर को एक उदाहरण के तौर पर इस्तेमाल किया कि कैसे भारतीय अध्यात्म ने समुदायों के बीच विभाजन को पाटने का कार्य किया और कबीर, नानक और चैतन्य जैसे आध्यात्मिक गुरुओं ने अपने-अपने समुदायों और ईश्वर के बीच परस्पर संबंधों का संदेश दिया।

व्यक्ति और पर-ब्रह्म के बीच संबंधों पर बात करते हुए टैगोर अक्सर कबीर की ही सहायता लेते है। अपनी रचना 'पर्सनेलिटी' में, जो कि 1917 में अमेरिका में उनके व्याख्यान पर आधारित एक किताब है, वह जिक्र करते हैं कि कैसे 'इंसान को एक से दूसरे के साथ सीधे संवाद के लिए जाना जाता है।' वह संवाद रुप और बदलावों की दुनिया में नहीं, दिक् और काल के विस्तार में भी नहीं, बल्कि यह संवाद चेतना के उस अंतरतम अकेलेपन में होता है, जो कि बेहद गहन और तीव्र होते हैं।

इसके बाद उन्होंने इस विचार को पुष्ट करने के लिए कबीर के अपने संकलन में से 76वें दोहे को उद्धृत किया। भारत के संबंध में अक्सर कबीर का उल्लेख करते हैं। जैसे अपनी किताब नेशनलिज्म(1916) में वह यह चर्चा करते हैं कि कैसे भारत में सांप्रदायिक सौहार्द स्थापित हुआ और फिर अपने विचार के समर्थन में नानक, कबीर और चैतन्य को उद्धृत करते हैं।

कबीर में टैगोर की दिलचस्पी उनके सहयोगी क्षितिमोहन सेन (1880-1960) से भी प्रभावित थी। अपनी रचना 'इंडियन मिस्टिसिज्म' में उन्होंने विस्तार से बताया है कि जब वह 1908 में शांतिनिकेतन पहुँचे, तब वह कबीर के पदों पर काम कर रहे थे और जब टैगोर को यह मालूम हुआ, तो उन्होंने इसे प्रकाशित करने के लिए उनको प्रोत्साहित किया। 1910 और 1911 में उन्होंने चार पर्चे छपवाए, जिसमें एक संक्षिप्त परिचय, बांग्ला लिपि में हिंदी के पदों तथा बांग्ला में उन पदों की विस्तारपूर्वक व्याख्या थी। टैगोर कबीर को भारत की धार्मिक एकता का उदाहरण मानते थे, इस बात को और क्षितिबाबू के कबीर पर किए गए काम को देखें तो यह समझ में आता है कि कबीर का अनुवाद उनके लिए कितना महत्वपूर्ण था।

कबीर मूलत: आध्यात्मिक व्यक्ति थे, भक्त थे, संत थे। वे 'मन' को जीतने के लिए संतों और भक्तों को प्रेरित करते रहते थे। कबीर का सारा का सारा संघर्ष आसक्ति और तृष्णा के विरूद्ध था। यही बात उन्हें सामाजिक दृष्टि से प्रासंगिक बनाती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर को समाज-सुधारक नहीं मानते है। उनके अनुसार कबीर पहले कवि थे, समाज सुधारक बाद में। समाज-सुधारक न मानने के पीछे आचार्य जी के जो भी तर्क हों, इतना अवश्य है कि कबीर के विचार समाज की चक्की में पिस-पिस कर ही इतने सूक्ष्म बने थे। हो सकता हैं समाज-सुधार, उनका मुख्य उद्देश्य न रहा हो, लेकिन जिस समाज के बाशिंदों को वह संबोधित करते थे, वे समाज में हाशिए पर पड़े हुए लोग थे। चतुर सामाजिक जन सारी मलाई खुद मार ले जाते थे और छाछ अबोधों के लिए छोड़ जाते थे। कबीर की सारी लड़ाई इसी अन्याय के खिलाफ थी। कविता के माध्यम से कबीर की समाज की बुराईयों पर जो चोट करते हैं, वह समाज-सुधार का ही तो हिस्सा है। [13,15]

कविता रूपी झाड़ से समाज की गंदगी को वे बुहारते जाते थे। आधुनिक प्रचलित तरीकों की दृष्टि से वे समाज सुधारक भले ही न कहलाएँ, लेकिन कबीर की कविताओं, दोहों, पदावलियों में समाज-सुधार की भावना से युक्त आध्यात्मिक भूमि दिखाई देती है। कई बार आध्यात्मिक पक्ष भारी पड़ता है। कुल मिलाकर देखें, तो कबीर की कविताई इन दोनों के मधुर पाक की तरह है।

कबीर अपने दौर के प्रौढ़ रचनाकार हैं। उनकी कविताओं में प्रगतिशीलता का तत्व प्रधान रूप से विद्यमान है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर को कवि न मानकर समाज सुधारक माना है, जबकि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें कवि माना और यह सिद्ध किया कि समाज सुधार उनकी कविता और कवित्व क्षमता के 'बाई प्रोडक्ट' के मानिंद है।

मेरी दृष्टि में उक्त दोनों आचार्यों की पहली स्थापना ठीक है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, कबीर समाज सुधारक थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मत में कबीर कवि हैं। उनकी दूसरी स्थापनाओं में नकारात्मक अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है। अत: कबीर के संदर्भ में उनकी सकारात्मक अभिव्यक्तियों को लेते हुए मेरा विचार है कि कबीर कवि, समाज सुधारक, संत, भक्त तथा प्रगतिशील विचारक हैं। इस प्रसंग में डॉ. रामचंद तिवारी के कुछ वाक्य उद्धृत हैं जो उन्होंने कबीर के बारे में लिखे हैं:-
"कबीरदास एक सिद्ध साधक एवं अखंड आस्थावादी इस विराट विश्व के मूल में विद्यमान रहस्यमयी सत्ता की कण-कण में अनुभूति करने वाले सच्चे रहस्यवादी, मानव-मात्र की एकता का प्रतिपादन करने वाले विवेकशील समाजद्रष्टा, निर्गुण-सगुण के भेद से ऊपर समतत्व का ध्यान करने वाले योगतत्वविद्, दार्शिनिक और सहज मानवीय जीवन की प्रतिष्ठा में अवरोधक शक्तियों के विरूद्ध विद्रोह करने वाले प्रज्ज्वलित चेतना के कवि थे।"

प्रस्तुत आलेख का केंद्र विंदू यही है कि वर्तमान दौर में कबीर के साहित्य की सार्थकता कितनी है। क्योंकि वर्तमान दौर में कबीर एक साहित्यिक, धर्मगुरू के रूप ज्यादा दिखाई पड़ते है। जबकि वह मूल रूप से समाज सुधारक है। उन्होंने अपनी पूरी जिंदगी

समाज में हाशिए पर पड़े लोगों को मुख्यधारा में लाने हेतु संघर्षों में बिता दिया। कबीर की सार्थकता निम्न विंदूओं से समझी जा सकती है।

· कबीर की बानियों में दिखावटी धर्म से विद्रोह और वास्तविक धर्म के प्रचार का क्रांतिकारी पहलू यह था कि उसने मध्यकाल में मनुष्य को आत्मप्रतिष्ठा, आत्मसम्मान और आत्मविश्वास दिया। मनुष्य को मनुष्य से प्रेम करना सिखाया।

· कबीर के जीवन का सबसे बड़ा संदेश आज के मनुष्यों के लिए यह है कि उन्होंने व्यापार और शिल्प की आमदनी पर संतोष करते हुए आम जीवन जीया। आज के संदर्भ में हम सभी को इसे सीखने की जरुरत है।

· उर्दू के प्रगतिशील शायर अली सरदार जाफरी के अनुसार, ''हमें आज भी कबीर के नेतृत्व की जरुरत हैं। उस रोशनी की जरुरत है जो इस संत के दिल से पैदा हुई थी। आज दुनिया आजाद हो रही हैं। विज्ञान की असाधारण प्रगति ने मनुष्य का प्रभुत्व बढ़ा दिया है। उद्योगों ने उसके बाहुबल में वृद्धि कर दी है। फिर भी वह तुच्छ है। संकटग्रस्त है। दुखी है। वह रंगों में बंटा हुआ है। जातियों में विभाजित है। आपस में धर्मों की दिवारें खड़ी हुई है।''

उपरोक्त पंक्तियों को अगर हम देखें तथा भक्ति काल के समय की परिस्थितियों को देखें तो पायेंगे कि आज के समय में कबीर की कितनी जरुरत है। विषय और सांकेतिक व्यंजनाओं के कारण कबीर की बानियां आज के पाठकों को समकालीन जीवन के बदले हुए संदर्भों में झकझोरती है जितनी मध्यकालीन यथार्थबोध के संदर्भों में।

कबीर के सामाजिक चिंतन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उनमें एक अद्‌भुत संतुलन मौजूद है, जो किसी भी रचनाकार की लेखकीय ईमानदारी का उदाहरण है। पर उससे भी बड़ी बात है उनका मनुष्य होना। इस एक बिंदु पर कबीर हमें आश्वस्त ही नहीं करते, बल्कि कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि उनका संवेदनशील मनुष्य उनके कवि से भी ज्यादा महान है। तभी तो वे समस्त सांसारिक पीड़ा को ओढ़े हुए हैं –

चलती चाकी देखि के दिया कबीरा रोय ।
दुई पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय ॥

उनकी आत्म–पीड़ा लोक-पीड़ा और लोकानुभूति से निष्पन्न एक ऐसी छटपटाहट है जो उनकी जीवन-साधना का अंग बन गई तथा जिसमें विषपान कर अमृत बाँटने का संदेश है। पराई पीर को समझना, मध्यकालीन लोक जागरण का वह गुरूमंत्र था, जो शताब्दियों से दबी-कुचली मानवता के लिए लोक-वेद का मंत्र बन गया। इस अर्थ में कबीर गरलपायी हैं।

कबीर ने भेदभाव की समस्त सीमाओं को तोड़कर, भक्त के रूप में जिस आदर्श मानव को सामने रखा है, वह मानव व्यक्तित्व के विकास की संपूर्ण संभावनाओं को निश्शेष कर उसे ईश्वरत्व के स्तर पर पहुँचा देने वाला है। इस रास्ते में जो भी चीज उन्हें बाधक लगी, उस पर अत्यंत सीधी-सपाट भाषा में वे तीखी चोट करते हैं।[15]

कबीर ने इस बात को बड़ी अच्छी तरह से समझ लिया था कि प्रभुवर्गीय संस्कृति के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए पंडे-पुरोहितों और मुल्ला-मौलवियों के सामाजिक–धार्मिक वर्चस्व को तोड़ना जरूरी है। लेकिन यह कार्य, जितना आवश्यक था, उतना ही कठिन भी। पुरोहितों के लिए कर्मकाण्डी विधानों का बना रहना जरूरी था, तो जन-साधारण के हित इनसे मुक्त होने में था। इस क्रम में वाद-विवाद की तार्किक शैली में लिखी गई कबीर की कविता प्राय: संबोधित कविता है और उसमें संबोधन के तीन स्वर हैं, जो उनके सामाजिक चिंतन की दशा और दिशा को निर्धारित करते हैं। प्रथम स्तर पर कबीर की कविता 'अवधू' अथवा 'अवधूत' को संबोधित है, तो दूसरे स्तर पर पाँड़े, 'पंडित, 'काजी', और मुल्ला को। इसी प्रकार तीसरा स्तर जनता को संबोधित कविता है, जहाँ संबोधन के शब्द हैं- 'साधो' और 'संतो'। व्यंग्य करने में उनका कोई सानी नहीं। पंडित हो या काजी, अवधू हों या जोगिया, मुल्ला हों या मौलवी, सभी को वे अपने व्यंग्य के निशाने पर रखते थे। और फिर चूंकि भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था, अत: वे जिस बात को जिस रूप में प्रकट करना चाहते थे, उसी रूप में भाषा से कहलवा लेते थे। कबीर के व्यक्तित्व के सामने भाषा कुछ असहाय-सी दरिद्र नजर आती है। जो बात कहनी असंभव हो, उसको नया स्वरूप देकर मनोग्राही बना देने की शक्ति कबीर की भाषा में है। वैसे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह प्रचलित कथन है कि ''हिंदी-साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा धनी व्यक्तित्व लेकर कोई अन्य लेखक उत्पन्न नहीं हुआ।''

उनका विरोध सांसारिक दृष्टि से दु:खी होने से है और भेद-भाव से भी। विरोध का स्वर तीखा है, कड़वा है। कहते हैं दु:खी तो सब हैं.....

''जोगी दुखिया जंगम दुखिया तपसी कौ दुख दूना हो।
आसा त्रिसना सबको व्यापै कोई महल न सूना हो। ''

और दु:ख का कारण ये 'आसा' और 'त्रिसना' ही हैं। अत: मन के विकारों- 'आसा' और 'त्रिसना' का शमन करना ही होगा। मानव-मानव में भेद तो परम अज्ञान का सूचक है। इसी तात्विक दृष्टि से अभिप्रेरित होकर कबीर ने जाति-पाँति, छुआ-छूत, ऊँच-नीच और ब्राह्मण-शूद्र के भेद का विरोध किया है। वे कहते हैं कि तत्त्वत: ये मिथ्या हैं तथा एक ही ज्योति सबमें व्याप्त है, दूसरा कोई तत्त्व नहीं-
''एकहि जोति सकल घट व्यापत दूजा तत्त न होई।
कहै कबीर सुनौ रे संतो भटकि मरै जनि कोई॥''

परमात्मा ने एक ही बूँद से सारी सृष्टि रची है, फिर ब्राह्मण-शूद्र का भेद क्यों? यदि हिंदू और तुर्क दो होते, तो जन्म से ही उनमें अंतर होता।

छूआछूत का विरोध भी कबीर ने इसी आधार पर किया। कहते हैं कि पवित्र स्थान कौन-सा है? विचार करने पर माता-पिता भी जूठे हैं और वृक्षों में लगने वाले फल भी, अग्नि और जल भी जूठे हैं। गोबर और चौका भी जुठे हैं। और तो और, अन्न भी जूठी कलछी से ही परोसा जाता है। वस्तुत: पवित्र और शुद्ध तो वे ही लोग हैं, जिन्होंने हरि की भक्ति करके अपने मन के विकारों को दूर कर लिया है। वे मन की पवित्रता और आंतरिक शुद्धता पर बल देते हैं। यह मन की पवित्रता भी एक आध्यात्मिक सत्य है।
''कहु पंडित सूचा कवन ठाऊ।
माता-पिता भी जूठा-जूठे ही फल लागे।
कहै कबीर तेई जन सूचे।
जे हरि भजि तजहिं विकारे।''

कबीर ने साधन के सभी क्षेत्रों में बाह्याचार का विरोध किया है। आडंबरी योगियों, तिलकधारी वैष्णवों-लुंचितों-मुण्डितों-मौनियों-जटाधारी से लेकर पीर-मुराद-काजी-मुल्ला-दरवेश आदि सभी भ्रांति में पड़े हुए हैं। ये अहंकार में पड़कर सत्य से विमुख हैं। वे तो पूजा-अर्चना, तीर्थ-व्रत तथा रोजा-नमाज, सभी को बाह्याचार ही मानते हैं। यहाँ पर वे कहते हैं:
''काँकर-पाथर जोरि के मस्जिद लियो चुनाय।
त चढ़ि मुल्ला बाँग दे क्या बहरो भयो खुदाय ॥''

यानी अल्लाह बहरे नहीं हैं, मन से आवाज लगाओ, तुम्हारी आवाज उन तक जरूर पहुँचेगी। वे आगे कहते हैं:
''पाहन पूजै हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार।
ताते वो चाकी भली पीस खाय संसार॥''

यहाँ पर वे मूर्ति-पूजा के आडंबर को प्रश्न चिन्ह को घेरे में रखते हैं और मन की पूजा तथा कर्म की साधना पर बल देते हैं। तप-जप, रोजा-नमाज, ये सब मन को परिष्कृत करने के साधन हैं। यदि दिल साफ नहीं, तो 'वजू' करने से क्या लाभ?
''क्या उजू जप मंजन कीएँ क्या मसीति सिरू नाएँ।
दिल महिं कपट निवाज गुजारै क्या हज काबै जाएँ।''

मस्जिद में जाकर सिर नवाने से क्या बनेगा? नमाज गुजारना या हज और काबे जाना तभी सार्थक है, जब दिल में कपट नहीं है। आशइ यह है कि कबीरदास ने जहाँ कहीं ढोंग, दिखावा, कपट, धोख, फरेब, आडम्बर, स्वांग, प्रपंच, छल, छद्म देखा, वहीं पर निर्मम प्रहार किया।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल कबीर को संत तो मानते थे, कवि नहीं। जबकि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी उन्हें सहज प्रवृत्ति का कवि कहते थे। कबीर की सामाजिक पकड़ इतनी जमीनी और इतनी गहरी थी कि कविता की अट्टालिकाएँ काफी सहज और ऊँची बनती जाती दिखती हैं। इस मायने में, कबीर की फक्कड़ प्रवृत्ति उनको काफी साफ-सुथरे व्यक्तित्व का स्वामी एवं पारदर्शी संत के रूप में सामने लाती है। यहाँ उनको पारदर्शी कहना तर्कसंगत इसलिए है कि वे कथनी-करनी दोनों में भेद नहीं करते थे और

इस बात का सामाजिक जीवन के क्षेत्र-कर्मक्षेत्र में वे विरोध करते थे। अपनी लेखनी के माध्यम से भी उन्होंने इस प्रवृत्ति को खत्म करने की मानो कसम खा ली थी।
''कबिरा खड़ा बजार में लिए लुकाठी हाथ।
जो घर जारे आपना चल हमारे साथ॥''

यहाँ मशाल यानी लुकाठी भगवान बुद्ध के 'अप्प दीपो भव', अर्थात् 'स्वयं का प्रकाश खुद बनो' उक्ति की ओर बढ़ते रहने की प्रेरणा देने वाला उपकरण सरीखा है। साथ ही, मन रूपी घर में जो अनुचित भावनाएँ घर कर गई हैं, उन्हें जलाने के जो लोग इच्छुक हैं, वे केवल उनको अपने-साथ आने की चुनौती देते हैं। ऐसी चुनौतियाँ तो आज के जमाने में और भी प्रासंगिक हो गई हैं, क्योंकि तब के जमाने से लेकर अब तक मन के भीतर काई की परतें और ज्यादा जम गई हैं। कवित्व का दंभ कबीर में भले न रहा हो, परंतु जमीनी सच्चाई की अभिव्यक्ति अपने अलग व निराले अंदाज में जिस कवित्व प्रतिभा तथा पटुता के साथ उन्होंने की है, वह वाकई काबिले-गौर तथा काबिले-तारीफ भी है।

सूक्ष्म से सूक्ष्म अभिव्यक्तियाँ कितनी सरल और सपाट हो सकती हैं, यह अगर देखना हो, तो कबीर वाङ्गमय में देखिए। कैसा भी दुर्बोध विचार, कैसे भी गूढ़ निहितार्थों वाले तथ्य कबीर सामाजिक-दार्शनिकों के सामने ऐसे परोसते हैं, मानो पकी-पकाई खिचड़ी। कबीर जीवनानुभव को ही अपनी लेखनी से उकेरते थे। सुनी-सुनाई बातों पर उनका विश्वास नहीं था। इसीलिए तो उन्होंने कहा है
''तू कहता कागद के लेखी,
मैं कहता आँखिन की देखी।''

कबीर संत भी थे, कवि भी थे। निम्न पंक्तियों में उनके दोनों रूपों का संगम देखें-
'' साधो, देखो जग बौराना।
हिंदू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस में दोऊ लड़तु मरतु हैं, मरम कोई नहीं जाना॥''

आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत उनकी निम्न पंक्तियां देखें –
''झीनी-झीनी बीनी चदरिया।
काहे कै ताना काहै कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।
इंड़ा-पिंगला ताना भरनी, सुसमन तार से बीनी चदरिया।
सो चादर सुर-नर-मुनि ओढ़िन, ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया।
दास कबीरा जतन से ओढ़िन, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।''

उपर्युक्त कथन में कबीरदास जी का आत्मविश्वास साफ-साफ झलकता है। वे बात को जीवन के ठोस सत्य के धरातल पर रखकर काफी कठोरता से कहने के पक्षधर थे। उनमें एक प्रकार की नैतिक ईमानदारी का अहसास कूट-कूटकर भरा हुआ था। इसी कारण, उनके अंदर गजब का आत्मविश्वास था। इसीलिए जब अदम्य आत्मविश्वास के साथ डंके की चोट पर वे अपनी बात कहते थे, तो हड़कंप मच जाता था। उनमें दंभ का लेशमात्र भी नहीं था। उनका स्वभाव, उनकी प्रवृत्ति फक्कड़ाना थी। उनकी आदत अक्खड़ों जैसी थी। भगवान के सच्चे भक्तों के सामने वे निरीह-से लगते थे, तो भेषधारियों के आगे प्रचंड रूप में आ जाते थे।

कबीरदास में एक सच्चे युग प्रवर्तक की दृढ़ता विद्यमान थी। उनमें वे तमाम गुण थे, जिनकी चर्चा उनके परवर्ती करते रहे हैं। प्रेम रस से पगे वे ऐसे फकीर थे, जिनकी वाणी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी कल थी। वे सच्चे अर्थों में अपने युग के प्रगतिशील पुरोधा थे। विचारों की दैन्यता उनके पास नहीं थी। गरीब होते हुए भी वास्तविक अमीर थे। उनके पास विचारों का धन पर्याप्त मात्रा में मौजूद था। कबीर ने स्वयं को भक्त कहा। जो व्यक्ति भक्त के अलावा संत या कवि या समाज-सुधारक या क्रांतिकारी के नाम को खुद पर चस्पाँ नहीं करना चाहता था, उसी व्यक्ति को परवर्ती साहित्यकारों ने कई-कई नामों से पुकारा। यह कबीर को अभीष्ट नहीं था। उनको अभीष्ट यह था कि कि लोग उनकी रचनाओं में प्रक्षेपित भावों को जस-का-तस ग्रहण करें तथा अपने जीवन को तदनुरूप बनाने की चेष्टा करें ताकि ऊँच-नीच, भेद-भाव, लोलुपता, संग्रह आदि प्रवृत्तियों का नाश हो,

क्षरण हो तथा समाज में जो तमाम दूरियाँ बन गई हैं, मनुष्य से मनुष्य के बीच की दूरियाँ वे कम हों। मनुष्य इन भेद-भाव की भावनाओं का प्रतिकार अपने मन के भीतर करे तथा उसे कर्म और आचरण के धरातल पर उतार कर अपनी सार्थकता सिद्ध करे।
[13,1,15]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर को समष्टिवादी न मानकर व्यष्टिवादी मानते थे। यहाँ कबीर को व्यष्टिवादी कहने का उनका तात्पर्य शायद यह रहा हो कि कबीर ने प्रत्येक मनुष्य को आत्मा तथा मन को पवित्र करने के साथ-साथ, निरंतर उद्यम करने को प्रेरित किया।
''मन के हारे हार है।
मन के जीते जीत।।''

इस प्रकार की उक्तियों से वे सदैव मन को वश में करने की प्रेरणा आम आदमी को देते रहते हैं। इसी प्रकार, जब व्यक्ति अपने 'मन' को जीतकर उच्च आदर्श के बिंदु पर पहुँचता है तब समाज का कल्याण होता है। समाज के इस रूप में निर्माण की कल्पना अगर कबीर करते हैं तो उन्हें समष्टिवादी कहने में कोई बुराई नहीं।

कबीर का ध्यान भेदभाव की ओर भी गया, लेकिन वे वहाँ पर एक आम आस्तिक भारतीय की विचारधारा ही दे पाए। यदि वे ऐसा कर पाते, तो समाज के विस्तृत तबके को अधिकाधिक लाभ जरूर मिलता। आर्थिक विषमता भी मनुष्यों की स्वार्थवृत्ति का परिणाम है, कबीर इसे भी समझने में सफल नहीं रहे थे। वे मानते थे कि भगवान ने जिसके लिए जितना निश्चित किया है उसको उतना ही प्राप्त होगा।

जीवन की सुविधाएँ अच्छे कर्मों का और असुविधाएँ बुरे कर्मों का परिणाम हैं। उनके लिए सुख-दु:ख अपने ही कर्मों का भोग था, अन्यथा बराबरी का दर्जा देने के क्रम में, उनका ध्यान आर्थिक गैर-बराबरी पर नहीं जाता, ऐसा नहीं है।
''जाकौं जेता निरमया ताकौं तेता होई।
राई घटे न तिल बढ़ै, जौ सिर कूटै कोई॥''

अगर उपयोग किया जाए, तो कबीर ने बहुत सारी ऐसी बातें कहीं हैं, जिनसे समाज-सुधार में सहायता प्राप्त हो सकती है। वे बाह्याचार के घोर विरोधी थे। बाह्याचार से मुक्त मनुष्यता को ही वे प्रेमभक्ति का पात्र मानते थे। इन विचारों को यदि आज का आधुनिक विचारशील मनुष्य अपने अंतर में ला सका, तो यहीं कबीर को सच्ची श्रद्धांजलि होगी। कबीर की भक्ति ईश्वर के दरबार में समानता और एकता की पक्षधर है। वर्तमान संदर्भों में अगर हम देंखे तो आज भी मंदिरों में जाति के नाम पर भेदभाव बरता जाता हैं। आज भी ऐसे कई ईश्वर के दरवाजे है जहां धर्म, जाति के नाम पर भेदभाव किया जाता हैं। लेकिन कबीरदास सभी को समान दृष्टि से देखते थे। ऐसे में आज भी कबीर के उपदेशों की जरुरत है। कबीर ने निर्गुण निराकार राम की आराधना कर यह सिद्ध किया कि ईश्वर निराकार है। सर्वज्ञ है। ऐसे समय में जब हमारा समाज इतना आधुनिक होते हुए भी धर्म के मामले में इतना उलझा हुआ है। मंदिर-मस्जिद के झगड़ों में उलझा हुआ है। कबीर के दोहों को उभारने की जरुरत है।
''माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुँह माहि।
मनुवाँ तो दस दिसि फिरे, यह तो सुमिरन नाही॥

प्रस्तुत दोहे से हम समझ समते है कि कबीरदास जी ने किस प्रकार धार्मिक आडंबरों पर चोट किया हैं। वे वास्तविक पूजा पर बल देते हैं। ऐसे में मुझे पिछले दिनों हुए एक सर्वे की याद आती है जिसमें भारतीय समाज को हद से ज्यादा धार्मिक दिखाया गया हैं।'' इसके बावजूद आज हमारे जीवन मूल्य टूट रहे है। हमारी मान्यतायें मूल्यों से निर्धारित नहीं हो रही हैं। हम धार्मिक कट्टरवाद के जाल में जकड़े जा रहे हैं। हमें आज कई जगह ऐसी खबरें पढ़ने-देखने को मिलती है जिसमें दो धर्मों के समुदायों के बीच दीवार बनाने की बात आती है ऐसे में कबीर स्वत: याद आते है जिसमें कबीर ने उस जमाने में इन दोनों धर्मों को हिंदू-मुसलमान को जोड़ने की कोशिश की थी; ऐसे में जब आज हम ज्यादा आधुनिक है तो क्या कबीरदास के विचारों की जरुरत फिर से है? मतलब हम आज भी अपने अंतर में मानवीय मूल्यों को उतार नहीं पाए हैं। वास्तव में कबीरदास ने धर्म और जीवन में कोई भेद रहने नहीं दिया। जीवन की सात्त्विक अभिव्यक्ति ही धर्म है।

कबीर ने नव मानववाद की स्थापना के लिए प्रयास किया। सभी धर्मों, पंथों, सभी मत-मतांतरों को खारिज कर वे एक तत्व पर जोर दे रहे थे। जिसे कुछ विद्वान एकेश्वरवाद की संज्ञा दे रहे थे। कुछ निर्गुणवाद। लेकिन सच मायनों में यह अनुभव पर आधारित नया ज्ञान था। जिसे अनेक विद्वान ज्ञानमार्ग का नाम देते हैं। इसी कारण कबीर कहते हैं:-
''हरि है खांड रेतु महि बिखरी, हाथी चुनि न जाई।
कहि कबीर गुरि भली बुझाई, कीटी होई कै खाई॥''

अर्थात् हरि खांड की तरह है जो संसार रुपी रेत में बिखरा हुआ, फैला हुआ मौजूद है। अंहकार से उन्मत्त रुपी हाथी उसे नहीं चुन सकता। कबीर का कहना है कि अपनी सहज और सूक्ष्म शक्ति से कीट की तरह या चीटीं की तरह उस खांड को पाया जा सकता हैं। अर्थात् ईश्वर तो सर्वत्र है। सर्वज्ञ है।
कबीरदास ने ईश्वर तत्व और मानव प्रेम दोनों को अभिन्न माना हैं। ईश्वर को पिता रुप, माता रुप, मित्र के रुप में उन्होंने माना है। कबीर ने जाति प्रथा और वर्णाश्रम व्यवस्था पर चोट किया हैं। कबीर का यह दोहा आज भी प्रासंगिक है:-
'' यह जग अंधा, मैं केहि समझावौं।
घर की वस्तु नजर नहीं आवत,
दियान बारि के ढ़ढ़त अंधा॥''

अर्थात् कबीर बिना वजह परेशान होने को माया मानते है और कहते हैं कि सब आपके अंदर बसा है, घर-घर ढ़ूंढ़ने की जरुरत नहीं। यह आज के दौर में सार्थक है। कारण कि मनुष्य सत्य की तलाश में जगह-जगह भटक रहा है। वह सत्य उसके अंदर ही है।

इसी कारण आज के दौर में कबीरदास का साहित्य सर्वाधिक प्रासंगिक है। यह साहित्य प्रत्येक चुनौती के मौके पर बहस के अखाड़े में मुस्तैद खड़ा रहता हैं। इस प्रकार अगर हम उपरोक्त तथ्यों पर गौर फरमाए तो पाते है कि कबीर आज कितने प्रासंगिक हैं। यह उनकी बानियों, दोहों से स्पष्ट झलकता है। चूँकि कबीर ने जिन प्रथाओं पर चोट किया था वो आज भी जिंदा है ऐसे में उनकी आवश्यकता फिर महसूस की जा सकती है। उन कोढ़ों को दूर करने के लिए फिर उनकी जरुरत है।

निष्कर्षत: हम समझ सकते है कि कबीर के उपदेशों को आज फिर से उभारने की जरुरत हैं। समाज में समत्व की भावना लाने की जरुरत है। छूआ-छूत, उँच-नीच की भावना को एक शिक्षित समाज का गुण-तत्त्व नहीं माना जा सकता। इस सामाजिक बुराई को हटाने की जरुरत है। धार्मिक बुराई, यथा तीर्थ-स्थान, कुर्बानी, श्राद्ध, मूर्तिपूजा, मुस्लिम धर्म में कुर्बानी, हलाल, सुन्नत इत्यादि को वे गलत मानते थे। यदि वास्तव में साम्यवाद लाना है तो कबीर की दृष्टि रखनी होगी। साथ ही धार्मिक तटस्थता भी रखनी होगी। कबीर की दृष्टि तो मार्क्स से भी पुरानी थी। उनकी यह समदर्शिता ही थी। इसी कारण, वे धन जोड़ने को गलत मानते थे। वे कर्मवाद के प्रबल समर्थक थे। बिना कर्म किए पाप धुलता नहीं। इस प्रकार सर्व-धर्म समभाव, विश्व में सभी के प्रति समदृष्टि, अपरिग्रह, कर्मयोग, तथा दया आदि मानवीय गुणों पर उन्होंने बल दिया। इसी कारण वे मानवतावादी कवि माने जाते है। और इन्हीं कारणों से वे सर्वाधिक प्रासंगिक है और रहेंगे।[14,15,16]

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

1. रमेशचन्द्र शाह: *छायावाद की प्रासंगिकता,* वाग्देवी पॉकेट बुक्स प्रकाशन, बीकानेर,2003 संस्करण, पृ. 156-157
2. विजयेन्द्र स्नातक, डॉ रमेशचन्द्र मिश्र:*कबीर वचनामृत,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, छठा संस्करण, 2005, पृ. 153
3. सुदर्शन चोपड़ा:*कबीर परिचय तथा रचनाएं,* हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली,नवीन संस्करण,2003, पृ. 31
4. रवीद्र कुमार सिंह:*संत-काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2005, पृ. 16
5. सुदर्शन चोपड़ा:*कबीर परिचय तथा रचनाएं,* हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली,नवीन संस्करण, 2003,पृ. 35
6. रवीद्र कुमार सिंह :*संत-काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2005, पृ. 86
7. सुदर्शन चोपड़ा:*कबीर परिचय तथा रचनाएं,* हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली,नवीन संस्करण,2003, पृ. 12
8. रवीद्र कुमार सिंह :*संत-काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2005, पृ. 88
9. सुदर्शन चोपड़ा:*कबीर परिचय तथा रचनाएं,* हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली,नवीन संस्करण,2003, पृ. 38
10. वही,पृ. 26

11. विजयेन्द्र स्नातक, डॉ रमेशचन्द्र मिश्र:*कबीर वचनामृत*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, छठा संस्करण, 2005, पृ. 152
12. जीवन सिंह ठाकुर : 'मानवीय चेतना की मुख्यधारा और कबीर', *कबीरदास विविध आयाम*(प्रभाकर श्रोत्रिय),भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता, प्रथम संस्करण 2002, पृ° 97
13.श्रीलता डॉ. के., कबीर-कवि और युग एक पुर्नमूल्याकंन प्रथम सं.-1997, जवाहर पब्लिकेशन, पृ., 107
14.दास डॉ. श्यामसुन्दर – कबीर ग्रन्थावली, पृ. 88
15.दास डॉ. श्यामसुन्दर – कबीर ग्रन्थावली, पृ. 103
16.देवरे डॉ. शिवाजी, कबीरदास – सृष्टि और दृष्टि, गरिमा प्रकाशन, कानपुर, पृ. 122